

Chapter अठारह

भगवान् वराह तथा असुर हिरण्याक्ष के मध्य युद्ध

मैत्रेय उवाच
 तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं
 महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ।
 हरेर्विदित्वा गतिमद्ग्न नारदाद्
 रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः—परम संत मैत्रेय ने; उवाच—कहा; तत्—वह; एवम्—इस प्रकार; आकर्ण्य—सुनकर; जल-ईश—जल का स्वामी, वरुण का; भाषितम्—शब्द; महा-मनाः—घमंडी; तत्—वे शब्द; विगणय्य—उपेक्षा करके; दुर्मदः—अहंकारी; हरेः—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; विदित्वा—पता लगाकर; गतिम्—पता; अद्ग्न—हे विदुर; नारदात्—नारद से; रसातलम्—समुद्र के नीचे; निर्विविशे—प्रवेश किया; त्वरा-अन्वितः—अत्यन्त वेग से।

मैत्रेय ने आगे कहा—उस घमंडी तथा अभिमानी दैत्य ने वरुण के शब्दों की तनिक भी परवाह नहीं की। हे विदुर, उसे नारद से श्रीभगवान् के बारे में पता लगा और वह अत्यन्त वेग से समुद्र की गहराइयों में पहुँच गया।

तात्पर्य : युद्धप्रिय भौतिकतावादी अपने परम बलशाली शत्रु श्रीभगवान् से भी लड़ने में नहीं डरते। वरुण से यह जानकर कि एक ऐसा योद्धा है, जिससे वह सचमुच लड़ सकता है, वह असुर अत्यन्त प्रोत्साहित हुआ। वह श्रीभगवान् को ढूँढ़ने के लिए उतावला हो उठा जिससे वह युद्ध कर सके, यद्यपि वरुण ने भविष्यवाणी कर दी थी कि विष्णु से युद्ध करने पर वह कुत्तों, सियारों तथा गीधों का भोजन बन जाएगा। चूँकि आसुरी लोग कम बुद्धिमान होते हैं, अतः वे अजित कहे जाने वाले विष्णु से भी लड़ने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

ददर्श तत्राभिजितं धराधरं
 प्रोन्नियमानावनिमग्रदंष्ट्रया ।
 मुष्णन्तमक्षणा स्वरुचोऽरुणश्रिया
 जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ददर्श—देखा; तत्र—वहाँ; अभिजितम्—विजयी; धरा—पृथ्वी; धरम्—धारण किये हुए; प्रोन्नियमान—ऊपर उठाई जाकर; अवनिम—पृथ्वी को; अग्र-दंष्ट्रया—अपनी दाढ़ों की नोक से; मुष्णन्तम्—जो घटा रहा था; अक्षणा—अपनी

आँखों से; स्व-रुचः—हिरण्याक्ष का आत्मतेज; अरुण—लाल लाल; श्रिया—चमकीला; जहास—हँसा; च—तथा; अहो—ओह; वन-गोचरः—उभयचर; मृगः—पशु।

वहाँ उसने सर्वशक्तिमान श्रीभगवान् को उनके वराह रूप में, अपनी दाढ़ों के अग्रभाग पर पृथ्वी को ऊपर की ओर धारण किये तथा अपनी लाल लाल आँखों से उसके समस्त तेज को हरते हुए देखा। इस पर वह असुर हँस पड़ा और बोला, “ओह! कैसा उभयचर पशु है?”

तात्पर्य : पिछले अध्याय में हमने पूर्ण पुरुषोत्तम के वराह अवतार का वर्णन किया है। जब वराह अपनी दाढ़ों से जल के गर्त में डूबी पृथ्वी को ऊपर उठाने में व्यस्त थे तो यह महा असुर हिरण्याक्ष उनसे मिला और उन्हें पशु कहकर उसने ललकारा। असुरगण भगवान् के अवतारों को नहीं समझ पाते; वे सोचते हैं कि मत्स्य, वराह अथवा कुर्म जैसे अवतार मात्र बड़े बड़े पशु हैं। वे श्रीभगवान् के शरीर को, भले ही वह मनुष्य रूप में क्यों न हो, नहीं समझ पाते और उनके अवतरण की खिल्ली उड़ाते हैं। चैतन्य सम्प्रदाय में नित्यानन्द प्रभु के अवतरण के सम्बन्ध में भ्रान्त आसुरी धारणा है। नित्यानन्द प्रभु का शरीर दिव्य है, किन्तु आसुरी लोग श्री भगवान् के शरीर को हमारे शरीरों के समान भौतिक मानते हैं। अवजानन्ति मां मूढाः—जो अज्ञानी हैं, वे भगवान् के दिव्य रूप को भौतिक मानकर हँसी उड़ाते हैं।

आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुञ्च नो
रसौकसां विश्वसृजेयमर्पिता ।
न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः
सुराधमासादितसूकराकृते ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

आह—हिरण्याक्ष ने कहा; एनम्—भगवान् से; एहि—आओ और लड़ो; अज्ञ—अरे मूर्ख; महीम्—पृथ्वी को; विमुञ्च—छोड़ दो; नः—हमारे लिए; रसा-ओकसाम्—निम्न लोकों के वासियों का; विश्व-सृजा—ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने वाले के द्वारा; इयम्—यह पृथ्वी; अर्पिता—अर्पित; न—नहीं; स्वस्ति—कल्याण; यास्यसि—तुम जाओगे; अनया—इसके साथ; मम ईक्षतः—मेरे देखते देखते; सुर-अधम—हे देवताओं में नीच; आसादित—लेकर; सूकर-आकृते—वराह का रूप।

असुर ने भगवान् को सम्बोधित करते हुए कहा—सूकर का रूप धारण किये हुए हे देवश्रेष्ठ, थोड़ा सुनिये तो। यह पृथ्वी हम अधोलोक के वासियों को सौंपी जा चुकी है, अतः तुम इसे मेरी उपस्थिति में मुझसे बचकर नहीं ले जा सकते।

तात्पर्य : इस श्लोक की टीका करते हुए श्रीधर स्वामी कहते हैं कि यद्यपि वह असुर वराह रूपी श्रीभगवान् का उपहास करना चाहता था, किन्तु वास्तव में उसने अनेक शब्दों से उनकी पूजा की। उदाहरणार्थ, उसने उन्हें वन-गोचर कहकर सम्बोधित किया जिसका अर्थ है, “जो वन का वासी है,” किन्तु “वनगोचर” का एक दूसरा भी अर्थ है, “जो जल में लेटा रहता है।” विष्णु जलशायी हैं, अतः परम पुरुषोत्तम भगवान् का यह सही सम्बोधन है। उस असुर ने उन्हें “मृग” कहकर सम्बोधित किया जिससे अनिच्छित यह अभिव्यक्त होता है कि भगवान् की खोज बड़े-बड़े ऋषि मुनि तथा दिव्य ज्ञानी करते रहते हैं। उसने उन्हें “अज्ञ” कहकर सम्बोधित किया। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि, “ज्ञ” का अर्थ ज्ञान है, अतः कोई ऐसा ज्ञान नहीं जो भगवान् को ज्ञात न हो। अतः असुर ने अप्रत्यक्ष रूप से कहा कि विष्णु सर्वज्ञाता हैं। असुर ने उन्हें सुराधम भी कहा। सुर का अर्थ ‘देवता’ है और अधम का अर्थ है ‘सबों’ का। वे समस्त देवताओं के भगवान् हैं, अतः वे समस्त देवताओं में श्रेष्ठ हैं। जब असुर ने ‘मेरी उपस्थिति’ वाक्यांश का प्रयोग किया, तो उसका यही अर्थ था, “मेरे उपस्थित रहने पर भी आप पृथ्वी को ले जा सकते हैं।” न स्वस्ति यास्यसि—“जब तक कृपा करके आप इस पृथ्वी को हमारी निगरानी से ले नहीं लेते तब तक हमारा कल्याण नहीं।”

त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो
 यो मायया हन्त्यसुरान्परोक्षजित् ।
 त्वां योगमायाबलमल्पपौरुषं
 संस्थाप्य मूढ प्रमृजे सुहृच्छुचः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; नः—हम सबके; सपत्नैः—हमारे शत्रुओं के द्वारा; अभवाय—मारने के लिए; किम्—क्या ऐसा ही है;
 भृतः—पालित; यः—जो; मायया—छल से; हन्ति—मारता है; असुरान्—असुर को; परोक्ष-जित्—अदृश्य रहकर जीतने वाला; त्वाम्—तुमको; योगमाया-बलम्—जिसकी शक्ति मोहक शक्ति है; अल्प-पौरुषम्—कम शक्ति वाला;
 संस्थाप्य—मारकर; मूढ—मूर्ख; प्रमृजे—दूर कर दूँगा; सुहृत्-शुचः—अपने बन्धुओं का शोक।

अरे धूर्त, हमारे शत्रुओं ने हमारे वध के लिए तुम्हें पाला है और तुमने अदृश्य रहकर कुछ असुरों को मार दिया है। अरे मूर्ख! तुम्हारी शक्ति केवल योगमाया है, अतः आज मैं तुम्हें मारकर अपने बन्धुओं का शोक दूर कर दूँगा।

तात्पर्य : असुर ने अभवाय शब्द का प्रयोग किया जिसका अर्थ, “मारने के लिए” है। श्रीधर स्वामी की टीका है कि इस ‘मारने’ का अर्थ मुक्ति दिलाना अर्थात् जन्म-मरण के प्रक्रम को मारना है। भगवान् जन्म-मरण के प्रक्रम को मारते हैं, किन्तु स्वयं अदृश्य बने रहते हैं। भगवान् की अन्तःशक्ति अचिन्त्य है, किन्तु इस शक्ति के नाममात्र के प्रदर्शन से भगवान् की कृपावश अज्ञान से उद्धार हो जाता है। शुचः का अर्थ है शोक या कष्ट। भगवान् अपनी योगमाया से इस भौतिक संसार के सारे दुखों को दूर कर सकते हैं। उपनिषदों (श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.८) में कहा गया है—*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*। भगवान् सामान्य मनुष्य को दृष्टिगोचर नहीं होते, किन्तु उनकी शक्तियाँ अनेक प्रकार से कार्यशील रहती हैं। जब असुर संकट में होते हैं, तो वे कहते हैं कि ईश्वर अपने को छिपा रहा है और योगशक्ति से काम कर रहा है। वे सोचते हैं कि यदि ईश्वर उन्हें मिल जाय तो वे उसे मात्र दृष्टिपात से मार डालें। हिरण्याक्ष यही सोचता था इसीलिए उसने भगवान् को ललकारा—“तुमने देवताओं का पक्ष लेकर हमारी जाति को महान् क्षति पहुँचाई है और तुमने अपने को सदा अदृश्य रखते हुए न जाने हमारे कितने ही बन्धु-बान्धवों का वध किया है। अब मैं तुम्हें अपने समक्ष पा गया हूँ, अतः मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा। मैं तुम्हारा वध करके अपने कुटुम्बियों को तुम्हारे योगिक कुकृत्यों से मुक्त करूँगा।”

असुर सदैव ईश्वर को न केवल वचन तथा विचार से मारने के लिए उत्सुक रहते हैं वरन् वे यह भी सोचते हैं कि यदि कोई भौतिक शक्ति एकत्र कर ले तो घातक भौतिक आयुधों से भी ईश्वर को मारा जा सकता है। कंस, रावण तथा हिरण्याक्ष जैसे असुर सदा अपने आपको इतना बलशाली मानते थे कि चाहें तो ईश्वर का वध कर दें। असुर यह नहीं समझ पाते कि ईश्वर अपनी बहुमुखी शक्तियों से इस विलक्षणता से कार्य कर सकते हैं कि वे अपने सनातन धाम गोलोक वृन्दावन में रहकर सर्वत्र उपस्थित रह सकते हैं।

त्वयि संस्थिते गदया शीर्णशीर्ष-

ण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ।

बलि हरन्त्यृषयो ये च देवाः

स्वयं सर्वे न भविष्यन्त्यमूलाः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

त्वयि—जब तुम; संस्थिते—मारे जाओगे; गदया—गदा से; शीर्षा—छिन्न भिन्न; शीर्षणि—सिर; अस्मत्-भुज—मेरे हाथ से; च्युतया—छूटी हुई; ये—जो; च—तथा; तुभ्यम्—तुमको; बलिम्—भेंट; हरन्ति—प्रदान करते हैं; ऋषयः—ऋषिगण; ये—जो; च—तथा; देवाः—देवता; स्वयम्—अपने आप; सर्वे—सभी; न—नहीं; भविष्यन्ति—होंगे; अमूलाः—बिना जड़ के, निराधार।

असुर ने आगे कहा—जब मेरी भुजाओं से फेंकी गई गदा द्वारा तुम्हारा सिर फट जाएगा और तुम मर जाओगे तो वे देवता तथा ऋषि जो तुम्हें भक्तिवश नमस्कार करते तथा भेंट चढ़ाते हैं, स्वतः मृत हो जाएँगे जिस प्रकार बिना जड़ के वृक्ष नष्ट हो जाते हैं।

तात्पर्य : जब देवता शास्त्रोक्त विधि से भगवान् का अर्चन करते हैं, तो असुर अत्यन्त विचलित होते हैं। वेदों में नवजिज्ञासु भक्त के लिए नौ प्रकार की भक्ति बताई गई है—यथा ईश्वर के पवित्र नाम का श्रवण तथा जप, इसका सदा स्मरण, माला में हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का जाप, मन्दिरों में श्रीविग्रह रूप में भगवान् की पूजा करना तथा कृष्णभक्ति में संलग्न रहना जिससे संसार में पूर्ण शान्ति के लिए साधु पुरुषों की संख्या में वृद्धि हो। असुरों को ऐसे कार्य पसंद नहीं है। असुर सदैव ईश्वर तथा उनके भक्तों से ईर्ष्या करते हैं। उनका यह प्रचार रहता है कि मन्दिर या गिरजाघर में पूजा न की जाय और इन्द्रिय-तुष्टि के लिए सारी भौतिक उन्नति की जाय। भगवान् को समक्ष पाकर हिरण्याक्ष अपनी शक्तिशाली गदा से उनका वध करके सदा सदा के लिए निश्चिन्त हो जाना चाहता था। यहाँ पर असुर द्वारा जड़विहीन वृक्ष का उदाहरण अत्यन्त सार्थक है। भक्त लोग मानते हैं कि ईश्वर सबों का मूल है। उनका कथन है कि जिस प्रकार उदर शरीर के भरण-पोषण के लिए ऊर्जा प्रदान करता है उसी प्रकार ईश्वर भौतिक तथा आध्यात्मिक लोकों में प्रकट होने वाली समस्त ऊर्जा का मूल स्रोत है, अतः जिस प्रकार उदर को भोजन-पूर्ति करने से शरीर के सभी अंग सन्तुष्ट होते हैं उसी प्रकार समस्त सुख के स्रोत को तुष्ट करने का एकमात्र दिव्य साधन कृष्ण की भक्ति है। असुर इस स्रोत को उच्छेदित करना चाहते हैं, क्योंकि यदि मूल रूप भगवान् को रुद्ध कर दिया जाए तो भगवान् तथा भक्तों के सारे

कार्यकलाप स्वतः रूक जाएंगे। लेकिन समाज की ऐसी स्थिति से असुरों को अत्यन्त संतोष प्राप्त होता है। वे अपनी इन्द्रियतुष्टि के लिए सदैव ईश्वरविहीन समाज की कामना करते रहते हैं। श्रीधर स्वामी के अनुसार इस श्लोक का अर्थ यह है कि जब श्रीभगवान् असुर को गदाविहीन कर देंगे तो न केवल नवदीक्षित भक्त वरन् ईश्वर के प्राचीन न्याय प्रिय भक्त भी अत्यधिक संतुष्ट होंगे।

स तुद्यमानोऽरिदुरुक्ततोमरै-

र्दष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ।

तोदं मृषन्निरगादम्बुमध्याद्

ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; तुद्यमानः—सताया जाकर; अरि—शत्रु का; दुरुक्त—दुर्वचनों से; तोमरैः—आयुधों से; दंष्ट्र-अग्र—अपनी दाढ़ों के अग्र भाग पर; गाम्—स्थित; गाम्—पृथ्वी को; उपलक्ष्य—देखकर; भीताम्—भयभीत; तोदम्—पीड़ा; मृषन्—सहते हुए; निरगात्—बाहर निकल आया; अम्बु-मध्यात्—जल के भीतर से; ग्राह—घड़ियाल से; आहतः—आक्रमण किया गया; स-करेणुः—हथिनी सहित; यथा—जिस प्रकार; इभः—हाथी।

यद्यपि भगवान् असुर के तीर सदृश बेधने वाले दुर्वचनों से अत्यन्त पीड़ित हुए थे, किन्तु उन्होंने इस पीड़ा को सह लिया। वे अपनी दाढ़ों के अग्रभाग पर स्थित पृथ्वी को भयभीत देखकर जल में से निकलकर उसी प्रकार बाहर आ गये जिस प्रकार घड़ियाल द्वारा आक्रमण किये जाने पर हाथी अपनी सहचरी हथिनी के साथ बाहर आ जाता है।

तात्पर्य : मायावादी दार्शनिक यह कभी नहीं समझेंगे कि भगवान् के भी संवेदनाएँ होती हैं। यदि कोई उनकी स्तुति करता है, तो भगवान् प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार यदि कोई उनके अस्तित्व को नकारता है या उन्हें गाली देता है, तो वे अप्रसन्न होते हैं। मायावादी दार्शनिक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की निन्दा करते हैं, अतः वे असुर तुल्य ही हैं। उनका कथन है कि ईश्वर के न कोई सिर है, न आकार है, न पाँव, न हाथ तथा न कोई अन्य शारिरिक अंग है। दूसरे शब्दों में, वे यह कहते हैं कि ईश्वर मृत या पंगु है। परमेश्वर के सम्बन्ध में ऐसी भ्रान्त धारणाएँ उनके असंतुष्ट होने के कारण हैं। वे कभी भी ऐसे निराकार वर्णनों से संतुष्ट नहीं होते। यहाँ पर, यद्यपि भगवान् को असुर के मर्मभेदी शब्दों से पीड़ा हो रही थी, किन्तु उन्होंने अपने परम भक्त

देवताओं के सन्तोष के लिए पृथ्वी का उद्धार किया। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वर हमारे ही समान संवेदनशील हैं। वे हमारी प्रार्थनाओं से प्रसन्न होते हैं और उनके प्रति दुर्वचनों से अप्रसन्न। वे अपने भक्तों को संरक्षण प्रदान करने के लिए नास्तिकों के दुर्वचन सहने के लिए सदैव तैयार रहते हैं।

तं निःसरन्तं सलिलादनुद्गतो

हिरण्यकेशो द्विरदं यथा झषः ।

करालदंष्ट्रोऽशनिनिस्वनोऽब्रवीद्

गतहियां किं त्वसतां विगर्हितम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; निःसरन्तम्—बाहर निकलते हुए; सलिलात्—जल से; अनुद्गतः—पीछा किया गया; हिरण्य-केशः—सुनहले बालों वाला; द्विरदम्—हाथी; यथा—जिस प्रकार; झषः—मकर, घड़ियाल; कराल-दंष्ट्रः—अत्यन्त भयावने दाँतों वाला; अशनि-निस्वनः—बिजली के समान कड़कते हुए; अब्रवीत्—बोला; गत-हियाम्—निर्लज्ज; किम्—क्या; तु—निस्सन्देह; असताम्—दुष्टों के लिए; विगर्हितम्—निन्दनीय।

सुनहले बालों तथा भयावने दाँतों वाले उस असुर ने जल से निकलते हुए भगवान् का उसी प्रकार पीछा किया जिस प्रकार कोई घड़ियाल हाथी का पीछा कर रहा हो। उसने बिजली के समान कड़क कर कहा, “क्या तुम अपने ललकारने वाले प्रतिद्वन्दी के समक्ष इस प्रकार भागते हुए लज्जित नहीं हुए हो?” निर्लज्ज प्राणियों के लिए कुछ भी निन्दनीय नहीं है।

तात्पर्य : जब भगवान् पृथ्वी का उद्धार करने के लिए उसको अपनी भुजाओं में लेकर पानी के बाहर आ रहे थे तो उस असुर ने अपमानसूचक शब्दों के द्वारा उनका उपहास किया, किन्तु भगवान् ने इसकी परवाह नहीं की क्योंकि उन्हें अपने कर्तव्य का बोध था। कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति के लिए कोई भय नहीं रहता। इसी प्रकार जो शक्तिशाली हैं उन्हें अपने शत्रु के उपहास या कटु वचनों से किसी प्रकार का भय नहीं लगता। भगवान् को किसी से डरने की कोई बात नहीं, तो भी वे अपने शत्रु की उपेक्षा करते हुए उसके प्रति दयालु बने रहे। यद्यपि वे एक प्रकार से ललकार से भाग रहे थे, किन्तु पृथ्वी को संकट से बचाने के उद्देश्य से ही उन्होंने हिरण्याक्ष के व्यंग्य-वचनों को सहन कर लिया।

स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे
 विन्यस्य तस्यामदधात्वसत्त्वम् ।
 अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनै-
 रापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (भगवान्); गाम्—पृथ्वी को; उदस्तात्—सतह पर; सलिलस्य—जल की; गोचरे—अपनी दृष्टि के अन्तर्गत; विन्यस्य—रखकर; तस्याम्—पृथ्वी को; अदधात्—सञ्चार किया; स्व—अपना, निज; सत्त्वम्—अस्तित्व; अभिष्टुतः—प्रशंसा की; विश्व-सृजा—ब्रह्मा (ब्रह्माण्ड के सृष्टा) द्वारा; प्रसूनैः—फूलों से; आपूर्यमाणः—प्रसन्न होकर; विबुधैः—देवताओं द्वारा; पश्यतः—देखते हुए; अरेः—शत्रु के ।

भगवान् ने पृथ्वी को लाकर जल की सतह पर अपनी दृष्टि के सामने रख छोड़ा और अपनी निजी शक्ति को उसमें स्थानान्तरित कर दिया जिससे वह जल पर तैरती रहे। शत्रु के देखते-देखते, ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति की और अन्य देवताओं ने उन पर फूलों की वर्षा की।

तात्पर्य : असुर लोग यह कभी नहीं समझ पाएंगे कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने जल पर पृथ्वी को किस प्रकार तैरा दिया, किन्तु भक्तों के लिए भगवान् का यह कृत्य तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है। न केवल पृथ्वी, वरन् न जाने कितने लाखों-करोड़ों लोक, वायु में तैर रहे हैं, उन्हें तैरने की यह शक्ति ईश्वर ने प्रदान की है; इसकी कोई अन्य व्याख्या नहीं है। भौतिकतावादी यह व्याख्या कर सकते हैं कि सभी लोक गुरुत्वाकर्षण के नियमानुसार तैर रहे हैं, किन्तु यह आकर्षण-नियम परमेश्वर के ही नियन्त्रण पर कार्यशील होता है। *भगवद्गीता* का भी यही कथन है, जिसमें भगवान् के वचन द्वारा पुष्टि की गई है कि चाहे भौतिक नियम हों या प्राकृतिक, अथवा समस्त लोकों की वृद्धि, पालन, उत्पत्ति हो, इन सबके पीछे भगवान् का हाथ है। भगवान् के कार्यकलापों को ब्रह्मा आदि देवता ही समझ सकते हैं, अतः जब उन्होंने भगवान् के असाधारण शौर्य को देखा जिससे वे पृथ्वी को जल की सतह पर रख सके थे तो उन्होंने भगवान् के इस दिव्य कृत्य के लिए उन पर फूलों की बौछार कर दी।

परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं
 महागदं काञ्चनचित्रदंशम् ।

मर्माण्यभीक्षणं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः

प्रचण्डमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

परा—पीछे से; अनुषक्तम्—पीछा करते हुए; तपनीय-उपकल्पम्—प्रचुर स्वर्ण आभूषण धारण किये हुए; महा-गदम्—भारी गदा सहित; काञ्चन—स्वर्णम; चित्र—सुन्दर; दंशम्—कवच; मर्माणि—अन्तस्तल; अभीक्षणम्—लगातार; प्रतुदन्तम्—बेधकर; दुरुक्तैः—दुर्वचनों से; प्रचण्ड—उग्र; मन्युः—क्रोध; प्रहसन्—हँसते हुए; तम्—उससे; बभाषे—कहा।

शरीर में प्रचुर आभूषण, कंकण तथा सुन्दर स्वर्णिय कवच धारण किये हुए वह असुर एक बड़ी सी गदा लिए भगवान् का पीछा कर रहा था। भगवान् ने उसके भेदने वाले दुर्वचनों को तो सहन कर लिया, किन्तु प्रत्युत्तर में उन्होंने अपना प्रचण्ड क्रोध व्यक्त किया।

तात्पर्य : भगवान् चाहते तो उस असुर को तभी दण्ड दे देते जब वह उनका कटु वचनों से उपहास कर रहा था, किन्तु भगवान् उसको सहन करते रहे जिससे देवता प्रसन्न हों और समझें कि अपना कार्य करते हुए उन्हें असुरों से भयभीत नहीं होना चाहिए। अतः वे अपनी सहनशीलता इसीलिए प्रदर्शित करते रहे जिससे देवताओं का भय दूर हो जाए और वे समझें कि उनकी रक्षा के लिए भगवान् सदैव उपस्थित रहते हैं। असुर द्वारा भगवान् का उपहास कुत्तों के भूकने के समान था; उन्हें उसकी तनिक भी परवाह नहीं थी। वे तो जल में से पृथ्वी के उद्धार-कार्य में व्यस्त थे। भौतिकतावादी असुरों के पास पर्याप्त सोना रहता है और वे यह सोचते हैं कि स्वर्ण की बड़ी मात्रा, भौतिक बल तथा लोकप्रियता उन्हें भगवान् के क्रोध से बचा लेगी।

श्रीभगवानुवाच

सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा

युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् ।

न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा

विकत्थनं तव गृह्णन्त्यभद्र ॥ १० ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—श्रीभगवान् ने कहा; सत्यम्—निस्सन्देह; वयम्—हम; भोः—अरे; वन-गोचराः—जंगल में वास करने वाले; मृगाः—प्राणी; युष्मत्-विधान्—तुम्हारे जैसों को; मृगये—मारने के लिए खोज रहा हूँ; ग्राम-सिंहान्—

कुत्ते; न—नहीं; मृत्यु-पाशैः—मृत्यु के फन्दे से; प्रतिमुक्तस्य—बद्धजीवों का; वीराः—वीर पुरुष; विकत्थनम्—आत्मश्लाघा; तव—तुम्हारा; गृह्णन्ति—ध्यान देते हैं; अभद्र—अरे दुष्ट।

भगवान् ने कहा—सचमुच हम जंगल के प्राणी हैं और तुम जैसे ही शिकारी कुत्तों का हम पीछा कर रहे हैं। जो मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो चुका है, वह तुम्हारी आत्मश्लाघा से नहीं डरता, क्योंकि तुम मृत्यु-बन्धन के नियमों से बँधे हुए हो।

तात्पर्य : भले ही असुर तथा नास्तिक लोग श्रीभगवान् का लगातार अपमान करें, किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि वे जन्म-मृत्यु के नियमों से बँधे हैं। वे सोचते हैं कि परमेश्वर के अस्तित्व को नकारने मात्र से अथवा प्रकृति के कठोर नियमों का अतिक्रमण करने से वे जन्म-मृत्यु के चंगुल से बच सकते हैं। भगवद्गीता में कहा गया है कि ईश्वर की दिव्य प्रकृति को समझ लेने मात्र से मनुष्य भगवान् के धाम लौट सकता है। असुर तथा नास्तिक लोग भगवान् के स्वभाव से परिचित नहीं होना चाहते, फलतः वे जन्म-मृत्यु के बन्धन में पड़े रहते हैं।

एते वयं न्यासहरा रसौकसां

गतह्रियो गदया द्रावितास्ते ।

तिष्ठामहेऽथापि कथञ्चिदाजौ

स्थेयं क्व यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

एते—अपने आप; वयम्—हम; न्यास—धरोहर का; हराः—चोर; रसा-ओकसाम्—रसातल के वासियों का; गत-ह्रियः—निर्लज्ज; गदया—गदा से; द्राविताः—पीछा किया जाकर; ते—तुम्हारा; तिष्ठामहे—हम बैठे रहेंगे; अथ अपि—तो भी; कथञ्चित्—कुछ-कुछ; आजौ—युद्धभूमि में; स्थेयम्—हम ठहर सकें; क्व—कहाँ; यामः—हम जा सकते हैं; बलिना—शक्तिशाली शत्रु से; उत्पाद्य—उत्पन्न करके; वैरम्—शत्रुता।

निस्सन्देह, मैंने रसातलवासियों की धरोहर चुरा ली है और सारी शर्म खो दी है। यद्यपि तुम्हारी शक्तिशाली गदा से मुझे कष्ट हो रहा है, किन्तु मैं जल में कुछ काल तक और रहूँगा क्योंकि तुम जैसे पराक्रमी शत्रु से शत्रुता ठान कर अन्यत्र जाने के लिए मेरे पास कोई ठौर भी नहीं है।

तात्पर्य : असुर को समझ लेना चाहिए था कि ईश्वर को किसी दूसरे स्थान में नहीं भगाया जा सकता था क्योंकि वह सर्वव्यापी है। असुर अपनी अधिकृत भूमि को अपनी सम्पत्ति मानते हैं, किन्तु वास्तव में प्रत्येक वस्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की है। वह जब चाहे कोई भी वस्तु

ले सकता है।

त्वं पद्मथानां किल यूथपाधिपो

घटस्व नोऽस्वस्तय आश्वनूहः ।

संस्थाप्य चास्मान्प्रमृजाश्रु स्वकानां

यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपत्यसभ्यः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; पद्-रथानाम्—पैदल सैनिकों का; किल—निस्सन्देह; यूथप—नायकों का; अधिपः—सरकार;
घटस्व—प्रयत्न करो; नः—हमारा; अस्वस्तये—हार के लिए; आशु—शीघ्रतापूर्वक; अनूहः—बिना विचार किए;
संस्थाप्य—मार कर; च—तथा; अस्मान्—हमको; प्रमृज—पोछ डालो; अश्रु—आँसू; स्वकानाम्—अपने सम्बन्धियों
का; यः—वह जो; स्वाम्—अपना, निज; प्रतिज्ञाम्—प्रतिज्ञा किये हुए वचन; न—नहीं; अतिपिपति—पूरा करते हैं;
असभ्यः—सभा के अयोग्य।

तुम पैदल सेना के नायक की तरह हो अतः तुम शीघ्र ही हमें हराने का प्रयत्न करो।

तुम अपनी बकवास बन्द कर दो और हमारा वध करके अपने सम्बन्धियों की चिन्ताओं को मिटा दो। कोई भले ही गर्वित हो, किन्तु यदि वह जो अपने दिये गये वचनों (प्रतिज्ञा) को पूरा नहीं कर पाता, सभा में आसन प्राप्त करने का पात्र नहीं है।

तात्पर्य : असुर, भले ही शूरवीर हो और विशाल पैदल सेना का नायक हो, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सामने वह शक्तिहीन रहता है और उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। अतः भगवान् ने असुर को ललकारा कि भागो नहीं, अपितु मेरा वध करने का अपना वचन पूरा करो।

मैत्रेय उवाच

सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम् ।

आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीड्यमानोऽहिराडिव ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः—परम ऋषि मैत्रेय ने; उवाच—कहा; सः—असुर ने; अधिक्षिप्तः—अपमानित होकर; भगवता—भगवान् द्वारा; प्रलब्धः—उपहास किया; च—तथा; रुषा—क्रुद्ध; भृशम्—अत्यधिक; आजहार—जुटाया; उल्बणम्—अधिक; क्रोधम्—क्रोध, गुस्सा; क्रीड्यमानः—खेला जाकर; अहि-राट्—विशाल विषधर (सर्प); इव—सदृश।

श्रीमैत्रेय ने कहा—जब श्रीभगवान् ने उस राक्षस को इस प्रकार ललकारा तो वह

क्रुद्ध और क्षुब्ध हुआ और क्रोध से इस प्रकार काँपने लगा, जिस प्रकार छेड़ा गया हुआ विषधर सर्प।

तात्पर्य : सामान्य पुरुषों के समक्ष नाग (सर्प) अत्यन्त डरावना हो जाता है, किन्तु सँपेरे के समक्ष तो वह खेलने की वस्तु बन जाता है। इसी तरह भले ही कोई असुर अपने प्रभाव क्षेत्र में कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, किन्तु भगवान् के समक्ष वह निरीह होता है। रावण देवताओं के समक्ष अत्यन्त भयावना व्यक्ति था, किन्तु जब वह भगवान् रामचन्द्र के समक्ष आया तो काँप रहा था और उसने अपने देव शिवजी से प्रार्थना की, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।

सृजन्नमर्षितः श्वासान्मन्युप्रचलितेन्द्रियः ।

आसाद्य तरसा दैत्यो गदया न्यहनद्धरिम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

सृजन्—निकालते हुए; अमर्षितः—अत्यन्त क्रुद्ध; श्वासान्—साँसें; मन्यु—क्रोध से; प्रचलित—विक्षुब्ध; इन्द्रियः—जिसकी इन्द्रियाँ; आसाद्य—आक्रमण करके; तरसा—शीघ्रता से; दैत्यः—असुर; गदया—गदा से; न्यहनत्—वार किया; हरिम्—भगवान् हरि पर।

क्रोध के मारे सारे अंगों को कँपाते तथा फुफकारता हुआ वह राक्षस तुरन्त भगवान् के ऊपर झपट पड़ा और उस ने अपनी शक्तिशाली गदा से उन पर प्रहार किया।

भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि ।

अवञ्चयत्तिरश्चीनो योगारूढ इवान्तकम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; तु—लेकिन; गदा-वेगम्—गदा के प्रहार को; विसृष्टम्—चलाया गया; रिपुणा—शत्रु द्वारा; असि—वक्षस्थल पर; अवञ्चयत्—धोखा देते हुए; तिरश्चीनः—एक ओर; योग-आरूढः—सिद्ध योगी; इव—सदृश; अन्तकम्—मृत्यु।

किन्तु भगवान् ने एक ओर सरक कर शत्रु द्वारा अपने वक्षस्थल पर चलाई गई गदा के प्रखर प्रहार को उसी प्रकार झुठला दिया जिस प्रकार सिद्ध योगी मृत्यु को चकमा दे देता है।

तात्पर्य : यहाँ यह उदाहरण दिया गया है कि परम योगी प्राकृतिक नियमों से प्रदत्त मृत्यु को भी जीत सकता है। भगवान् के दिव्य शरीर पर शक्तिशाली गदा से प्रहार करना असुर के लिए निष्प्रयोजन होता है, क्योंकि भगवान् के शौर्य से कोई पार नहीं पा सकता। सिद्ध योगी प्रकृति के नियमों से मुक्त होते हैं, अतः उन पर मृत्यु का भी वश नहीं चलता। ऊपर-ऊपर से

ऐसा लगता है कि योगी पर मृत्यु का प्रहार हो रहा है, किन्तु भगवान् की सेवा करते रहने के लिए वह उन की कृपा से ऐसे अनेक प्रहारों पर विजय प्राप्त कर लेता है। चूँकि भगवान् अपने शौर्य के बल पर स्वच्छन्द रहते हैं, अतः भक्त भी उनके अनुग्रह से उनकी सेवा के लिए जीवित रहते हैं।

पुनर्गदां स्वामादाय भ्रामयन्तमभीक्षणशः ।

अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरम्भादृष्टदच्छदम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

पुनः—फिर; गदाम्—गदा; स्वाम्—अपना; आदाय—लेकर; भ्रामयन्तम्—घुमाता हुआ; अभीक्षणशः—बारम्बार; अभ्यधावत्—भेंट करने के लिए दौड़ा; हरिः—श्रीभगवान्; क्रुद्धः—नाराज; संरम्भात्—क्रोध में; दृष्ट—काटता हुआ, चबाता हुआ; दच्छदम्—अपना होठ।

तब श्री भगवान् अपना क्रोध प्रदर्शित करते हुए उस राक्षस की ओर झपटे जो क्रोध के कारण अपने होठ चबा रहा था। उसने फिर से अपनी गदा उठाई और उसे बारम्बार घुमाने लगा।

ततश्च गदयारातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः ।

आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; च—तथा; गदया—अपनी गदा से; अरातिम्—शत्रु को; दक्षिणस्याम्—दाई ओर; भ्रुवि—भौंह पर; प्रभुः—भगवान् ने; आजघ्ने—प्रहार किया; सः—भगवान्; तु—लेकिन; ताम्—गदा; सौम्य—हे भद्र विदुर; गदया—अपनी गदा से; कोविदः—कुशल; अहनत्—उसने अपने को बचा लिया।

तब भगवान् ने अपनी गदा से शत्रु की दाहिनी भौंह पर प्रहार किया, किन्तु वह असुर युद्ध में कुशल था, इसलिए, हे भद्र विदुर, उसने अपनी गदा की चाल से अपने आपको बचा लिया।

एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च ।

जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; गदाभ्याम्—अपनी गदाओं से; गुर्वीभ्याम्—विशाल; हर्यक्षः—हर्यक्ष नामक असुर (हिरण्याक्ष); हरिः—भगवान् हरि; एव—निश्चय ही; च—तथा; जिगीषया—विजय की लालसा से; सुसंरब्धौ—क्रुद्ध; अन्योन्यम्—परस्पर; अभिजघ्नतुः—उन्होंने प्रहार किया।

इस प्रकार असुर हिरण्याक्ष तथा भगवान् हरि ने एक दूसरे को जीतने की इच्छा से क्रुद्ध होकर अपनी अपनी विशाल गदाओं से एक-दूसरे पर प्रहार किया।

तात्पर्य : हर्यक्ष हिरण्याक्ष का दूसरा नाम है।

तयोः स्पृधोस्तिग्मगदाहताङ्गयोः

क्षतास्त्रवघ्नाणविवृद्धमन्व्योः ।

विचित्रमार्गाश्चरतोर्जिगीषया

व्यभादिलायामिव शुष्मिणोर्मृधः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों में; स्पृधोः—दोनों प्रतिस्पर्धा करने वाले; तिग्म—नुकीली; गदा—गदाओं से; आहत—घायल; अङ्गयोः—उनके शरीर; क्षत—आस्रव—घावों से बहता रक्त; घ्नाण—गन्ध; विवृद्ध—बढ़ गई; मन्व्योः—क्रोध; विचित्र—अनेक प्रकार के; मार्गान्—चालें; चरतोः—करते हुए; जिगीषया—जीतने की इच्छा से; व्यभात्—के समान प्रतीत होता था; इलायाम्—गाय (अथवा पृथ्वी) के लिए; इव—सदृश; शुष्मिणोः—दो साँड़ों की; मृधः—मुठभेड़।

दोनों योद्धाओं में तीखी स्पर्धा थी, दोनों के शरीरों पर एक दूसरे की नुकीली गदाओं से चोटें लगी थीं और अपने-अपने शरीर से बहते हुए रक्त की गन्ध से वे अधिकाधिक क्रुद्ध हो चले थे। जीतने की उत्कण्ठा से वे तरह-तरह की चालें चल रहे थे और उनकी यह मुठभेड़ वैसी ही प्रतीत होती थी जैसे किसी गाय के लिए दो बलवान् साँड़ लड़ रहे हों।

तात्पर्य : यहाँ पर पृथ्वीलोक को इला कहा गया है। पृथ्वी पहले इलावृत-वर्ष कहलाती थी, किन्तु जब महाराज परीक्षित ने पृथ्वी पर शासन किया, तो यह भारतवर्ष कहलाती थी। वास्तव में भारतवर्ष पूरे लोक का नाम है, किन्तु कालान्तर में भारतवर्ष से भारत (इंडिया) का बोध होने लगा है। जिस प्रकार कुछ काल पूर्व भारत का विभाजन पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान में हुआ उसी प्रकार पृथ्वी पहले इलावृत-वर्ष कहलाती थी, किन्तु ज्यों ज्यों समय बीतता गया इसकी अनेक राष्ट्रों की सीमाओं में बटंता गया।

दैत्यस्य यज्ञावयवस्य माया-

गृहीतवाराहतनोर्महात्मनः ।

कौरव्य महां द्विषतोर्विमर्दनं

दिदक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

दैत्यस्य—असुर का; यज्ञ-अवयवस्य—श्रीभगवान् का (यज्ञ जिसके शरीर का एक अंग है); माया—अपनी शक्ति से; गृहीत—धारण किया गया; वाराह—शूकर का; तनोः—जिसका रूप; महा-आत्मनः—परमेश्वर का; कौरव्य—हे विदुर (कौरवों के वंशज); मह्याम्—संसार के कल्याण हेतु; द्विषतोः—दोनों शत्रुओं का; विमर्दनम्—युद्ध; दिदक्षुः—देखने के लिए इच्छुक; आगात्—आये; ऋषिभिः—ऋषियों द्वारा; वृतः—साथ साथ आये हुए; स्वराट्—ब्रह्मा ।

हे कुरुवंशी, वाराह रूप में प्रकट श्री भगवान् तथा असुर के मध्य विश्व के निमित्त होने वाले इस भयंकर युद्ध को संसार के हेतु देखने के लिए ब्रह्माण्ड के परम स्वतन्त्र देवता ब्रह्मा अपने अनुयायियों सहित आये ।

तात्पर्य : पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा असुर के युद्ध की तुलना गाय के लिए लड़ने वाले दो साँड़ों के युद्ध से की गई है । पृथ्वी लोक को गो अर्थात् गाय भी कहा जाता है । जिस प्रकार गाय से संसर्ग करने के लिए दो साँड़ परस्पर लड़ते हैं उसी प्रकार से इस पृथ्वी पर आधिपत्य जमाने के लिए असुरों तथा परमेश्वर या उनके प्रतिनिधियों के मध्य अनवरत संग्राम चलता रहता है । यहाँ पर भगवान् को यज्ञावयव के रूप में विशेषरूप से वर्णित किया गया है । किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् का शरीर सामान्य शूकर का था । वे कोई भी रूप धारण कर सकते हैं और वे ऐसे रूपों से नित्य युक्त रहते हैं । उन्हीं से सारे रूपों का उदय हुआ है । उनके वराट् रूपी शरीर को सामान्य शूकर नहीं मानना चाहिए, उनका शरीर वास्तव में यज्ञ से पूर्ण रहता है । यज्ञ (हवि) विष्णु को प्रदान किया जाता है । यज्ञ का अर्थ है भगवान् विष्णु का शरीर । उनका शरीर भौतिक नहीं होता, अतः उन्हें सामान्य शूकर नहीं समझना चाहिए ।

इस श्लोक में ब्रह्मा को स्वराट् कहा गया है । वस्तुतः पूर्ण स्वतन्त्रता तो भगवान् को ही प्राप्त है, किन्तु भगवान् का अंश होने से प्रत्येक जीवात्मा में कुछ न कुछ स्वतन्त्रता निहित है । ब्रह्मा को समस्त जीवात्माओं में प्रमुख होने के कारण अन्यो की अपेक्षा कुछ अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है । वे भगवान् श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि हैं और सांसारिक व्यापारों की अध्यक्षता करने के लिए नियुक्त हैं । अन्य सभी देवता उनके लिए कार्य करते हैं इसीलिए उन्हें यहाँ स्वराट् कहा गया है । महान् ऋषि तथा योगी सदैव उनके साथ-साथ रहते हैं, अतः वे सभी, असुर तथा

भगवान् का युद्ध देखने के लिए आये थे।

आसन्नशौण्डीरमपेतसाध्वसं

कृतप्रतीकारमहार्यविक्रमम् ।

विलक्ष्य दैत्यं भगवान्सहस्रणी-

जगाद नारायणमादिसूकरम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

आसन्न—प्राप्त करके; शौण्डीरम्—शक्ति; अपेत—विहीन; साध्वसम्—भय; कृत—करके; प्रतीकारम्—विरोध; अहार्य—निर्विरोध होकर; विक्रमम्—शक्ति युक्त; विलक्ष्य—देखकर; दैत्यम्—असुर को; भगवान्—पूज्य ब्रह्मा ने; सहस्र-नी:—हजारों ऋषियों के नायक; जगाद—सम्बोधित किया; नारायणम्—भगवान् नारायण को; आदि—मूल; सूकरम्—सूकर रूप।

युद्धस्थल में पहुँचकर हजारों ऋषियों तथा योगियों के नायक ब्रह्माजी ने असुर को देखा, जिसने अभूतपूर्व शक्ति प्राप्त कर ली थी जिससे कोई भी उससे युद्ध नहीं कर सकता था। तब ब्रह्मा ने आदि सूकर रूप धारण करने वाले नारायण को सम्बोधित किया।

एष ते देव देवानामङ्घ्रिमूलमुपेयुषाम् ।

विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥ २२ ॥

आगस्कृद्भयकृदुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः ।

अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने कहा; एषः—यह असुर; ते—आपका; देव—हे भगवान्; देवानाम्—देवताओं का; अङ्घ्रि-मूलम्—आपके चरण; उपेयुषाम्—शरणागत; विप्राणाम्—ब्राह्मणों को; सौरभेयीणाम्—गायों को; भूतानाम्—सामान्य जीवात्माओं को; अपि—भी; अनागसाम्—निर्दोष; आगः-कृत्—अपराधी; भय-कृत्—भय का कारण; दुष्कृत्—दोषी; अस्मत्—मुझसे; राद्ध-वरः—वरदान प्राप्त; असुरः—असुर; अन्वेषन्—ढूँढ़ते हुए; अप्रतिरथः—योग्य जोड़ न होने से; लोकान्—समूचे ब्रह्माण्ड में; अटति—घूमता है; कण्टकः—सबों के लिए काँटे के समान बना हुआ।

ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवन्, यह राक्षस, देवताओं, ब्राह्मणों, गौवों तथा आपके चरणकमलों में समर्पित निष्कलुष व्यक्तियों के लिए निरन्तर चुभने वाला काँटा बना हुआ है। उन्हें अकारण सताते हुए यह भय का कारण बन गया है। इन्हें अकारण सताते हुए यह भय का कारण बन गया है। मुझसे वरदान प्राप्त करने के कारण यह असुर बना है और समस्त भूमण्डल में अपनी जोड़ के योद्धा की तलाश में इस अशुभ कार्य के लिए

घूमता रहता है।

तात्पर्य : जीवात्मा दो प्रकार के होते हैं—एक सुर अर्थात् देवता कहलाती हैं और दूसरी असुर या दैत्य। असुर प्रायः देवताओं की पूजा करते हैं और ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं कि पूजा से उन्हें इन्द्रियतृप्ति की असीम शक्ति प्राप्त हुई है। इसी कारण से ब्राह्मणों, देवताओं तथा अन्य निर्दोष जीवात्माओं को कष्ट मिलता है। वे इनके दोष निकालते रहते हैं और उनके लिए निरन्तर भय का कारण बने रहते हैं। आसुरी ढंग ही ऐसा है कि देवताओं से शक्ति प्राप्त करके उन्हीं को सताया जाय। शिवजी के एक महान् भक्त का उदाहरण मिलता है, जिसे शिव ने यह वर दिया था कि वह जिस किसी के सिर को छू देगा, उस का सिर धड़ से अलग हो जाएगा। ज्यों ही उसे यह वर प्राप्त हुआ उसने शिवजी का ही सिर छूना चाहा। यही उनकी रीति है। किन्तु भगवान् के भक्त कभी इन्द्रियतृप्ति के लिए कोई वर नहीं चाहते। यदि उन्हें मुक्ति भी भेंट की दी जाती है वे उसे अस्वीकार कर देते हैं। वे तो भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगे रहने में प्रसन्न रहते हैं।

मैत्रं मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशमसत्तमम् ।

आक्रीड बालवदेव यथाशीविषमुत्थितम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

मा—मत; एनम्—उसको; माया-विनम्—माया करने वाला; दृप्तम्—हेकड़ीबाज; निरङ्कुशम्—आत्मनिर्भर; असत्-तमम्—अत्यन्त दुष्ट; आक्रीड—खेल करें; बाल-वत्—बच्चे के समान; देव—हे भगवान्; यथा—जिस प्रकार; आशीविषम्—सर्प; उत्थितम्—जगा हुआ।

ब्रह्माजी ने आगे कहा—हे भगवान्, इस सर्पतुल्य असुर से खेल करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह सदैव मायावी करतब में दक्ष तथा हेकड़ी बाज है, साथ ही निरंकुश एवं अत्यधिक दुष्ट भी।

तात्पर्य : जब सर्प मारा जाता है, तो कोई दुखी नहीं होता। देहातों के लड़के अब भी साँप को पूँछ से पकड़ कर कुछ समय तक खेल करते हैं और फिर उसे मार डालते हैं। इसी प्रकार भगवान् चाहते तो असुर को तुरन्त मार डालते, किन्तु वे उससे उसी प्रकार खेल रहे थे जैसे साँप को मारने के पहले लड़के उससे खेल करते हैं। फिर भी ब्रह्मा ने प्रार्थना की कि चूँकि

यह असुर अत्यन्त दुष्ट है और साँप से भी अधिक त्याज्य है, अतः उसके साथ खिलवाड़ करने की आवश्यकता नहीं है। वे चाहते थे कि उसका तुरन्त वध कर दिया जाय।

न यावदेष वर्धेत स्वां वेलां प्राप्य दारुणः ।

स्वां देव मायामास्थाय तावज्जहाघमच्युत ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

न यावत्—इसके पूर्व कि; एषः—यह असुर; वर्धेत—बढ़े; स्वाम्—स्वतः; वेलाम्—आसुरी वेला; प्राप्य—प्राप्त करके; दारुणः—भयंकर, दुर्जय; स्वाम्—निजी; देव—हे भगवान्; मायाम्—अन्तरंगा शक्ति; आस्थाय—प्रयोग करके; तावत्—तुरन्त; जहि—मार डालें; अघम्—पापी; अच्युत—हे अच्युत या अमोघ।

ब्रह्माजी ने आगे कहा—हे भगवान्, आप अच्युत हैं। कृपा करके इस पापी असुर को इसके पूर्व कि आसुरी घड़ी आए और यह अपने अनुकूल दूसरा भयंकर शरीर धारण कर सके, आप इसका वध कर दें। निस्सन्देह आप इसे अपनी अन्तरंगा शक्ति से मार सकते हैं।

एषा घोरतमा सन्ध्या लोकच्छम्बट्करी प्रभो ।

उपसर्पति सर्वात्मन्सुराणां जयमावह ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

एषा—यह; घोर-तमा—परम अँधेरी; सन्ध्या—सायंकाल; लोक—संसार; छम्बट्-करी—विनाशकारी; प्रभो—हे भगवान्; उपसर्पति—पास आती है; सर्व-आत्मन्—समस्त आत्माओं का आत्मा, परमात्मा; सुराणाम्—देवताओं का; जयम्—विजय; आवह—लाएँ।

हे भगवान्, संसार को आच्छादित करने वाली अत्यन्त अँधेरी सन्ध्या वेला निकट आ रही है चूँकि आप सभी आत्माओं के आत्मा हैं, अतः आप इसका वध करके देवताओं को विजयी बनाएँ।

अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् ।

शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तर दुस्तरम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

अधुना—इस समय; एषः—यह; अभिजित् नाम—अभिजित कहलाने वाला; योगः—शुभ; मौहूर्तिकः—घड़ी; हि—निस्सन्देह; अगात्—प्रायः बीत चुकी है; शिवाय—कल्याण के लिए; नः—हम सबों के; त्वम्—तुम (आप); सुहृदाम्—अपने मित्रों का; आशु—तुरन्त; निस्तर—निपट लीजिये; दुस्तरम्—दुर्जय शत्रु।

विजय के लिए सर्वाधिक उपयुक्त अभिजित नामक शुभ मुहूर्त (घड़ी) का योग

दोपहर से हो चुका है और अब बीतने ही वाला है, अतः अपने मित्रों के हित में आप इस दुर्जय शत्रु का अविलम्ब सफाया कर दें।

दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् ।
विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—सौभाग्यवश; त्वाम्—तुमको; विहितम्—विहित; मृत्युम्—मृत्यु; अयम्—यह असुर; आसादितः—आया है; स्वयम्—स्वेच्छा से; विक्रम्य—अपना शौर्य प्रदर्शन करके; एनम्—उसको; मृधे—द्वन्द्व में; हत्वा—मारकर; लोकान्—लोकों को; आधेहि—स्थापित करें; शर्मणि—शान्ति में।

सौभाग्य से यह असुर स्वेच्छा से आपके पास आया है और आपके द्वारा ही इसकी मृत्यु विहित है, अतः आप इसे अपने ढंग से युद्ध में मारिये और लोकों में शान्ति स्थापित कीजिये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध के अन्तर्गत “भगवान् वराह तथा हिरण्याक्ष के मध्य युद्ध” नामक अठारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।